रमाशंकर यादव 'विद्रोही' की कवितायेँ

औरतें

कुछ औरतों ने अपनी इच्छा से कूदकर जान दी थी
ऐसा पुलिस के रिकॉर्ड में दर्ज है
और कुछ औरतें अपनी इच्छा से चिता में जलकर मरी थीं
ऐसा धर्म की किताबों में लिखा हुआ है

मैं कवि हूँ, कर्त्ता हूँ
क्या जल्दी है

मैं एक दिन पुलिस और पुरोहित दोनों को एक साथ
औरतों की अदालत में तलब करूँगा
और बीच की सारी अदालतों को मंसूख कर दूँगा

मैं उन दावों को भी मंसूख कर दूंगा
जो श्रीमानों ने औरतों और बच्चों के खिलाफ पेश किए हैं
मैं उन डिक्रियों को भी निरस्त कर दूंगा
जिन्हें लेकर फ़ौजें और तुलबा चलते हैं
मैं उन वसीयतों को खारिज कर दूंगा
जो दुर्बलों ने भुजबलों के नाम की होंगी.

मैं उन औरतों को
जो अपनी इच्छा से कुएं में कूदकर और चिता में जलकर मरी हैं
फिर से ज़िंदा करूँगा और उनके बयानात
दोबारा कलमबंद करूँगा
कि कहीं कुछ छूट तो नहीं गया?
कहीं कुछ बाक़ी तो नहीं रह गया?
कि कहीं कोई भूल तो नहीं हुई?

क्योंकि मैं उस औरत के बारे में जानता हूँ
जो अपने सात बित्ते की देह को एक बित्ते के आंगन में
ता-जिंदगी समोए रही और कभी बाहर झाँका तक नहीं
और जब बाहर निकली तो वह कहीं उसकी लाश निकली
जो खुले में पसर गयी है माँ मेदिनी की तरह

औरत की लाश धरती माता की तरह होती है
जो खुले में फैल जाती है थानों से लेकर अदालतों तक

मैं देख रहा हूँ कि जुल्म के सारे सबूतों को मिटाया जा रहा है
चंदन चर्चित मस्तक को उठाए हुए पुरोहित और तमगों से लैस
सीना फुलाए हुए सिपाही महाराज की जय बोल रहे हैं.

वे महाराज जो मर चुके हैं
महारानियाँ जो अपने सती होने का इंतजाम कर रही हैं
और जब महारानियाँ नहीं रहेंगी तो नौकरानियां क्या करेंगी?
इसलिए वे भी तैयारियाँ कर रही हैं.

मुझे महारानियों से ज़्यादा चिंता नौकरानियों की होती है
जिनके पति ज़िंदा हैं और रो रहे हैं

कितना ख़राब लगता है एक औरत को अपने रोते हुए पति को छोड़कर मरना
जबकि मर्दों को रोती हुई स्त्री को मारना भी बुरा नहीं लगता

औरतें रोती जाती हैं, मरद मारते जाते हैं
औरतें रोती हैं, मरद और मारते हैं
औरतें ख़ूब ज़ोर से रोती हैं
मरद इतनी जोर से मारते हैं कि वे मर जाती हैं

इतिहास में वह पहली औरत कौन थी जिसे सबसे पहले
जलाया गया?
मैं नहीं जानता
लेकिन जो भी रही हो मेरी माँ रही होगी,
मेरी चिंता यह है कि भविष्य में वह आखिरी स्त्री कौन
होगी
जिसे सबसे अंत में जलाया जाएगा?
मैं नहीं जानता
लेकिन जो भी होगी मेरी बेटी होगी
और यह मैं नहीं होने दूँगा.

जन-गण-मन

मैं भी मरूंगा
और भारत के भाग्य विधाता भी मरेंगे
लेकिन मैं चाहता हूं
कि पहले जन-गण-मन अधिनायक मरें
फिर भारत भाग्य विधाता मरें
फिर साधू के काका मरें
यानी सारे बड़े-बड़े लोग पहले मर लें
फिर मैं मरूं- आराम से
उधर चल कर वसंत ऋतु में
जब दानों में दूध और आमों में बौर आ जाता है
या फिर तब जब महुवा चूने लगता है
या फिर तब जब वनबेला फूलती है
नदी किनारे मेरी चिता दहक कर महके
और मित्र सब करें दिल्लगी
कि ये विद्रोही भी क्या तगड़ा कवि था
कि सारे बड़े-बड़े लोगों को मारकर तब मरा.

नई खेती

मैं किसान हूँ
आसमान में धान बो रहा हूँ
कुछ लोग कह रहे हैं
कि पगले! आसमान में धान नहीं जमा करता
मैं कहता हूँ पगले!
अगर ज़मीन पर भगवान जम सकता है
तो आसमान में धान भी जम सकता है
और अब तो दोनों में से कोई एक होकर रहेगा
या तो ज़मीन से भगवान उखड़ेगा
या आसमान में धान जमेगा.

कविता और लाठी

तुम मुझसे
हाले-दिल न पूछो ऐ दोस्त!
तुम मुझसे सीधे-सीधे तबियत की बात कहो।
और तबियत तो इस समय ये कह रही है कि
मौत के मुंह में लाठी ढकेल दूं,
या चींटी के मुह में आंटा गेर दूं।
और आप- आपका मुंह,
क्या चाहता है आली जनाब!
जाहिर है कि आप भूखे नहीं हैं,
आपको लाठी ही चाहिए,
तो क्या
आप मेरी कविता को सोंटा समझते है?
मेरी कविता वस्तुतः
लाठी ही है,
इसे लो और भांजो!
मगर ठहरो!
ये वो लाठी नहीं है जो
हर तरफ भंज जाती है,
ये सिर्फ उस तरफ भंजती है
जिधर मैं इसे प्रेरित करता हूं।
मसलन तुम इसे बड़ों के खिलाफ भांजोगे,
भंज जाएगी।
छोटों के खिलाफ भांजोगे,
न,
नहीं भंजेगी।
तुम इसे भगवान के खिलाफ भांजोगे,
भंज जाएगी।
लेकिन तुम इसे इंसान के खिलाफ भांजोगे,
न,
नहीं भंजेगी।
कविता और लाठी में यही अंतर है।

नानी

कविता नहीं कहानी है,
और ये दुनिया सबकी नानी है,
और नानी के आगे
ननिहाल का वर्णन अच्छा नहीं लगता।

मुझे अपने ननिहाल की बड़ी याद आती है,
आपको भी आती होगी!
एक अंधेरी कोठी में
एक गोरी सी बूढ़ी औरत,
रातो-दिन जलती रहती है चिराग की तरह,
मेरे खयालों में।
मेरे जेहन में मेरी नानी की तसवीर
कुछ इस तरह से उभरती है
जैसे कि बाजरे के बाल पर गौरैया बैठी हो।
और मेरी नानी की आंखे...
उमड़ते हुए समंदर सी लहराती हुई
उन आंखों में,
आज भी आपाद मस्तक डूब जाता हूं
आधी रात को दोस्तों!

और उन आंखों की कोर पर लगा हुआ
काजल,
लगता था कि जैसे
क्षितिज छोर पर बादल घुमड़ रहे हों।
और मेरी नानी की नाक,
नाक नहीं पीसा की मीनार थी,
और मुंह, मुंह की मत पूछो,
मुंह की तारे थी मेरी नानी,
और जब चीख कर डांटती थीं,
तो जमीन इंजन की तरह
हांफने लगती थी।
जिसकी आंच में आसमान का लोहा
पिघलता था,
सूरज की देह गरमाती थी,
दिन धूप लगती थी,
और रात को जूड़ी आती थी।

और गला, द्वितीया के चंद्रमा की तरह,
मेरी नानी का गला पता ही नहीं चलता था,
कि हंसुली में फंसा है या हसुली गले में फंसी है।
लगता था कि गला, गला नहीं,
विधाता ने समंदर में सेतु बांध दिया है।

और मेरी नानी की देह,
देह नहीं आर्मीनिया की गांठ थी,
पामेर के पठार की तरह
समतल पीठ वाली मेरी नानी,
जब कोई चीज उठाने के लिए
जमीन पर झुकती थीं,
तो लगता था जैसे बाल्कन झील में
काकेसस की पहाड़ी झुक गई हो!
बिलकुल इस्कीमों बालक की तरह
लगती थी मेरी नानी।
और जब घर से निकलती थीं,
तो लगता था जैसे
हिमालय से गंगा निकल रही हो!

एक आदिम निरंतरता
जे अनादि से अनंत की और उन्मुख हो।
सिर पर दही की डलिया उठाये,
जब दोनों हाथों को झुलाती हुई चलती थी,
तो लगता था जैसे सिर पर
दुनिया उठाये हुए जा रही हो।
जिसमें मेरे पुरखों का भविष्य छिपा हो,
और मेरा जी करे कि मैं पूछूं,
कि ओ री बुढिया, तू क्या है,
आदमी कि आदमी का पेड़!

पेड़ थी दोस्तों, मेरी नानी आदमियत की,
जिसका कि मैं एक पत्ता हूं।
मेरी नानी मरी नहीं है,
वह मोहनजोदड़ो के तालाब में
स्नान को गई है,
और अपनी धोती को
उसकी आखिरी सीढ़ी पर सुखा रही है।
उसकी कुंजी यहीं कहीं खो गई है,
और वह उसे बड़ी बेसब्री के साथ खोज रही है।
मैं देखता हूं कि मेरी नानी
हिमालय पर मूंग दल रही है,
और अपनी गाय को
एवरेस्ट के खूंटे से बांधे हुए है।
मैं खुशी में तालियां बजाना चाहता हूं,
लेकिन यह क्या!!
मेरी हथेलियों पर सरसों उग आई है,
मैं उसे पुकारना चाहता हूं,
लेकिन मेरे होठों पर दही जम गई है,
मैं पाता हूं
कि मेरी नानी दही की नदी में बही जा रही है।
मैं उसे पकड़ना चाहता हूं,
पकड़ नहीं पाता हूं,
मैं उसे बुलाना चाहता हूँ,
लेकिन बुला नहीं पाता हूं,
और मेरी देह, मेरी समूची देह,
एक पत्ते की तरह थर-थर कांपने लगती है,
जो कि अब गिरा कि तब गिरा।

(कविताकोश से साभार)